'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक ४९-५० | वाराणसी, मंगलवार, २८ अप्रैल, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन

सिंघानी (पंजाब) २-४-'५९

आजादी के बाद एकमात्र कार्यक्रम सर्वोदय-आन्दोलन

[गतांक से आगे]

इन दिनों शरीर-श्रम के काम को हीन माना जाता है। हाथों को मिट्टी का स्पर्श न हो, ऐसा लोग चाहते हैं। जिस मिट्टी से हम पैदा हुए, उसीसे अछूता रहना कितना गलत खयाल है। लोग काम करनेवालों को अछूता मानते हैं। लेकिन हम मानते हैं कि जो शख्स अपने हाथों से काम नहीं करेंगे, वे जलील बनेंगे। परमेश्वर ने ये हाथ काम करने के लिए दिये हैं। यह जिस्म खिदमत के वास्ते दिया है। काम करने और सेवा करने से रूह को तसल्ली मिलती है। जो लोग यह चाहेंगे कि हमें सेवा का बदला मिले, दुनिया में हमारा नाम हो, लोग हमारी कीर्ति गायें, हमें रुतबा मिले, पद मिले, लाभ मिले—वे उत्तम मिठाई में भी जहर मिला लेंगे। मिठाई मीठी लगने पर भी घातक सिद्ध होगी। वैसे ही सेवा भी असेवा सिद्ध होगी। इन दिनों लोग क्या कर रहे हैं? चुनाव में चुने जाने की आशा से लोग सेवा करते हैं। अभी कांग्रेस ने जाहिर किया है कि जो लोग पदयात्रा नहीं करेंगे, उन्हें चुनाव में टिकट नहीं दिया जायगा। यह तो बिलकुल बच्चोंवाली बात हो गयी। बच्चों को कहा जाता है कि देखो, यह काम नहीं करोगे, तो शाम को खाना नहीं मिलेगा। बच्चे डर के मारे काम कर देते हैं या इनाम के लालच में भी काम कर देते हैं। वैसे ही डर और लालच से सेवा का काम किया जा रहा है। जरा-सी सेवा के बदले ज्यादा मेवा चाहते हैं। इसीसे सेवा करनेवाले के दिल को तसल्ली नहीं होती। लेकिन जहाँ प्रेम और मुहब्बत से मनुष्य खिदमत करता है, तब वह भगवान् की सेवा हो जाती है। बदला जरूर मिलनेवाला है, लेकिन उसे भगवान् के पास ही रहने दो। सेवा सेवा के लिए करो। उसमें मिलावट न होने दो।

इन दिनों घी में मिलावट चलती है, दवाइयों में मिलावट चलती है, मरीजों को दवा देने में भी मिलावट! इससे बढ़कर और कौन-सा गुनाह हो सकता है? मानवता के खिलाफ भयानक विद्रोह है। यहाँ इन दिनों सारा काम इस तरह चल रहा है कि खालिस सेवा दुष्कर हो गयी है।

शहरवालों की भयानकता

वर्धा जिले की बात है। वहाँ जमीन मिली, बँटी। भूदान-किसानों ने उस जमीन में अच्छी फसल पैदा की। जिन कार्यकर्ताओं ने उन्हें वह जमीन दिलवायी, वे दस-बारह लोग मिलकर भूदान-किसानों के पास श्रमदान करने के लिए गये। उन्हें इस प्रकार आते देखकर भूदान-किसान घबरा गये। वे सोचने लगे कि हमने जमीन में बोया, फसल आयी और अब ये वापस जमीन लेने आ गये। उन भोले-भाले किसानों को ऐसा लगा कि कलि-काल में बिना मतलब के कोई जमीन कैसे दे सकता है? उन्हें घबराते देखकर कार्यकर्ताओं ने समझाया कि घबराओ मत! हम आपके खेत में श्रमदान करने आये हैं। कलि-काल में ऐसी प्राप्ति हो सकती है, ऐसा विश्वास उन देहातवालों को कैसे हो सकता है?

आजकल देहात में जो जाते हैं, वे लूटने के लिए जाते हैं। उड़ीसा में हमने देखा कि वहाँ के ग्रामवासी लोग शेरों से जितना नहीं डरते, उतना शहरवालों से डरते हैं। वे शहर के लोगों को देखते ही दूर भाग जाते हैं। उनसे पूछने पर उन्होंने बताया कि जंगल के जानवर बहुत भयानक होते हैं, पर हम उनका मुकाबला कर सकते हैं। लेकिन शहरवालों का मुकाबला करना नहीं जानते।

समस्या की जड़

छोटी-छोटी सेवाएँ और छोटे-छोटे सुधार करने से अब काम नहीं चलेगा। ऊपर-ऊपर से दवा करना भी बुरा नहीं है। पर अब तो बीमारी की जड़ ही काटनी होगी। गाँव में स्कूल खोलें, कुआँ बना दें, इतने से बीमारी की जड़ें नहीं कटेंगी। बीमारी की जड़ है मालकियत। जमीन की मालकियत, फैक्टरी की मालकियत मिटायी जाय! प्रेम से। प्रेम ही ऐसा औजार है, जिससे मालकियत की जड़ें मिटेंगी। जो मालिक हैं, उनके पास प्रेम से पहुँचना चाहिए और कहना चाहिए कि हम सब भाई हैं। 'भाई-भाई एक समान', हम सब बाँटकर खायेंगे, मिलकर पैदा करेंगे।

जब से यह विचार हमारे ध्यान में आया है, तब से हमें बहुत आनन्द हुआ है। लोग इस विचार को कबूल करें या न करें, लेकिन यह एक सही बात है, 'इन्कलाबी' बात है। इससे मालकियत की जड़ें कटेंगी। जड़ काटने का काम आरम्भ हो गया है, अब हम जगह-जगह पहुँचते हैं और यह विचार समझाते हैं। विचार से इन्कलाब होता है। इसलिए हम चाहते हैं कि हमारे विचारों का प्रचार खूब हो और खूब साहित्य खपे। ◆◆◆

स्वागत-प्रवचन

समाना (पटियाला) २२-४-'५९

पंजाब को विश्वमय और विश्व को पंजाबमय बनायें

पंजाब में हमें आये तीन सप्ताह हो रहे हैं। इसके पहले हिसार वगैरह का जो हिस्सा था, वह राजस्थान का ही विस्तार (एक्सटेंशन) था। हकीकत में पंजाब अभी आया है। मैं देखता हूँ, पंजाब में जो मिली-जुली सभ्यता है, वह हिन्दुस्तान की अपनी खासियत है। हमारे देश में दुनिया की सभी जातियाँ—मानव-वंश और सभी धर्मों के लोग आ पहुँचे हैं। सारे भारत को विश्व से बहुत बड़ी देन मिली है। उसीके परिणामस्वरूप हिन्दुस्तान की सभ्यता बहुत समृद्ध हुई, एकांगी नहीं रही। यह बहुत बड़ी बात है। उस देन का दर्शन पंजाब में होता है। विदेशी जनता पंजाब से होकर ही हिंदुस्तान में दाखिल हुई है। पुराने जमाने में पंजाब हमारे देश का एक मुख्य द्वार था, पर अब वह बदल गया। जब से समुद्र की ताकत प्रकट हुई, फ्रेन्च, अंग्रेज आदि समुद्र किनारे से ही हिंदुस्तान में प्रवेश करने लगे। ये दोनों जमीन और समुद्र की चीजें थीं, पर अब तो आसमानवाली चीज भी आ गयी है। अब विज्ञान के कारण इस ग्रह का उस ग्रह से संबंध जोड़ने की बात चलती है। शनि, मंगल ग्रहों के साथ संबंध जोड़ने की बात चलती है और एक दिन हमारा उनसे संबंध जुड़ भी जायगा। यों तो पहले भी हमने वह संबंध जोड़ ही रखा है। अपनी जन्म-कुंडलियों में हम शनि, मंगल आदि का प्रभाव देखते ही आ रहे हैं। इसीसे यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि हमारा ध्यान पहले से ही इन ग्रहों की तरफ गया था।

दिमाग के साथ दिल भी बड़ा बने

आज जब विज्ञान के जरिये हमारे ग्रहों से बाह्य संबंध भी जुड़ रहे हैं, तो अंदर से भी संबंध जुड़ना चाहिए। इसलिए दिल विस्तृत होना चाहिए। दिल संकुचित रहा, छोटा रहा, तो बाहर से संबंध भी छोटा ही होगा। दिमाग बहुत बड़ा और दिल छोटा रहा, तो खतरा होगा। आज बड़े दिमाग के साथ छोटे दिल की टक्कर हो रही है। विज्ञान का जमाना आया है, पर दिल छोटा ही रह गया है। किन्तु छोटा दिल और बड़ा दिमाग इस जमाने में चल नहीं सकता। दिल के अनुपात में दिमाग भी छोटा रहे, तो ठीक है, जैसे कि चींटियों का होता है। उनका दिल भी छोटा होता है और दिमाग भी। इसीलिए कहा जाता है कि पृथ्वी पर से मनुष्य-समाज मिट जायगा, परंतु चींटियाँ कायम रहेंगी। दिल और दिमाग दोनों समान रूप से छोटे रहने चाहिए या दोनों समान रूप से बड़े रहें। दिमाग का दायरा छोटा रहने के कारण झगड़े पैदा होते हैं। आज दुनियाभर की जो खबरें अखबारों में आती हैं और वे सारी झगड़े की खबरें होती हैं। कारण आज दिमाग बड़ा हो गया और दिल छोटा ही रहा है। हम किसी एक कोने में रहते हैं। दिमाग जितना बड़ा बन गया है, अगर दिल भी उतना बड़ा न बना, तो बड़ा खतरा है। हम कर्नाटक से महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान से पंजाब तक 'जय जगत्' का घोष सुनते आये हैं, सुनकर बड़ी खुशी होती है। दुनिया की जय होगी, तो उसमें हमारी भी जय है।

हम अभिमान रखते हैं कि हमारा देश बहुत बड़ा है। इसलिए कवि गाता है: 'सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ताँ हमारा।' पर पूछा जाय कि क्यों अच्छा? तो जवाब मिलेगा, हमारा है लेकिन कई दूसरे देश भी हैं, जो अच्छे हैं, फिर अपना ही देश अच्छा क्यों? जैसे बड़ी-बड़ी नदियाँ हमारे देश में हैं, वैसी ही दूसरे देशों में भी। इसलिए हम यह दावा नहीं कर सकते कि हमारा ही देश सुन्दर है और दूसरे देश सुन्दर नहीं हैं। अगर सुन्दर हैं, तो सारे देश ही सुन्दर हैं। अगर ईश्वर सुन्दर है, तो सबका सब सुन्दर है। आधा सुन्दर और आधा असुन्दर नहीं हो सकता। इसलिए हमारा देश भी सुन्दर है, ईरान भी सुन्दर है, इङ्गलैंड भी सुन्दर है, फ्रान्स भी सुन्दर है।

'जय हिन्द' से 'जय जगत्' की ओर

ऐसा अगर न हो, तो फिर 'जय पंजाब', 'जय महाराष्ट्र' ही कहना होगा, जिसमें बहुत बड़ा खतरा है।

आज एक भाई कह रहे थे कि 'विश्व की जय' बोलनी चाहिए। मैंने कहा—मंगल वगैरह से परिचय हो जाय, तो आगे जाकर वह भी बोलेंगे। खैर, दस साल के अंदर 'जय हिन्द' से 'जय जगत्' तक बढ़ गये हैं। इतना हम नहीं बढ़ें, तो विज्ञान तो बहुत बढ़ ही रहा है। हिरोशिमा पर जो बम गिरा था, वह छोटा-सा ही साबित हो रहा है, क्योंकि उससे भी बड़े-बड़े शस्त्र बन रहे हैं। अतः हमें इन शस्त्रास्त्रों से भी बड़ी रूहानी ताकत पैदा करनी होगी। नहीं तो जिस्म और रूह में लड़ाई होगी। इसमें बहुत बड़ा खतरा है।

इसलिए पंजाब के सामने यह मसला नहीं है कि यहाँ कौन मिनिस्टर बने, कौन नहीं बने? कौन-सी लिपि चले या कौन-सी भाषा चले? पंजाब के सामने खास मसला यही है कि यहाँ 'जय जगत्' कैसे हो? पंजाब हिंदुस्तान को दुनिया के साथ जोड़नेवाली कड़ी है, इसी रूप में उसे आगे आना चाहिए। पंजाब का जो मिशन था, वह आज पूर्ण करने का समय आ गया है। पहले पंजाब कुल दुनिया के साथ हिंदुस्तान को जोड़ता था। अब वह यही काम पहले से भी ज्यादा अच्छा कर सकेगा, क्योंकि विज्ञान आगे बढ़ा है। ध्यान रहे कि हमारी भारत की मिली-जुली तमद्दून, सभ्यता है।

'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'

आज ही रास्ते में आते समय एक जगह पढ़ा—

'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' (ऋग्वेद)

इसका एक अर्थ यह होता है कि विश्व को आर्य बनाना चाहिए, तो दूसरा यह अर्थ होता है कि आर्य को विश्व बनाना चाहिए, क्योंकि यह संस्कृत है। विश्व को आर्यमय बनाओ और आर्य को विश्वमय याने आर्यमय विश्व और विश्वमय आर्य बनाना चाहिए। इसका एकांगी अर्थ नहीं हो सकता। पंजाब ने विश्व के साथ आर्य का संबंध जोड़ दिया है। इसीलिए पंजाब का यही मिशन है कि विश्व को आर्य से और आर्य को विश्व से जोड़ दें, ताकि हम पूर्ण बन जायँ। हम अधूरे, अपूर्ण, हिस्सा, टुकड़ा न रहें। 'नानक पूरा पाया, पूरे की गुण गाऊँ।' विष्णु भी पूर्ण है, शंकर भी पूर्ण है, अपूर्ण कोई नहीं है। इसलिए हम टुकड़ा नहीं बनेंगे। टुकड़ा करनेवाले बहादुर तो दुनिया में बहुत पड़े हैं, इसलिए पंजाब को अब यही बहादुरी दिखानी चाहिए कि 'हम जोड़नेवाले हैं, तोड़नेवाले नहीं'। हम पूर्ण हैं, अपूर्ण नहीं।

पंजाब का मिशन

इसलिए हम आशा करते हैं कि भूदान और ग्रामदान का काम यहाँ होगा। भूदान का काम याने आपका ही काम उठाने के लिए हम यहाँ आये हैं। हमारी पंजाब में आने की बात चलती थी। तब हम कहते थे कि 'हम पंजाब में आयें, इसके बदले पंजाब ही हमारे पास आ जाय।' लेकिन पंजाब याने कौन? रक्त, श्वेत, कृष्ण, पीत और श्याम। हिन्दुस्तान की प्रजा श्याम वर्ण की है, लेकिन यहाँ पाँचों वर्ण दीखते हैं। अतः पंजाब याने अपना छोटा-सा देश नहीं, छोटी मूर्ति नहीं, कुल विश्व ही बड़ा पंजाब है। हमें विश्व को पंजाबमय बनाना है और पंजाब को विश्वमय, भारत को विश्वमय बनाना और विश्व को भारतमय, आर्य को विश्वमय बनाना और विश्व को आर्यमय—यह है हमारा पैगाम। यही पैगाम लेकर हम आठ साल से पैदल घूम रहे हैं।

मेरा अपना कोई काम नहीं

हम आशा करते हैं कि आप यह काम अपना समझकर उठायेंगे। यह आपका ही काम है। हमारी मदद और आपकी मदद मिल रही है, ऐसा नहीं होना चाहिए। यह हम नहीं चाहते। मैं यह स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि मेरे लिए दुनिया में अब कोई काम नहीं है। 'यदि मैं यहाँ मर जाऊँ, तो मेरी लाश उठाकर कहीं पवित्र जगह ले जायँ' ऐसी इच्छा मैं नहीं करता। मेरी लाश यहीं रहने दो। जिस जमीन पर यह देह गिरेगी, उसी जमीन का इस पर हक होगा। इसलिए यह काम मेरा नहीं, आपका है!'

लालाजी (लाला अचिंतराम) कहते थे कि जैसे नामदेव (महाराष्ट्र के संत) पंजाब में १५ साल रहे थे, वैसे ही आपको भी रहना चाहिए। मैंने कहा—मैं ऐसी तैयारी में हूँ कि इस जमीन पर गिर जाऊँ, बशर्ते कि आप इसे अपना मिशन समझकर काम करें। इसलिए मिशन आपका होना चाहिए। फिर चाहे आप मुझे इसमें खतम करें। यहाँ इस काम में खुद को खतम करने के लिए मैं तैयार हूँ।

बड़ी खुशी होती है—यहाँ काले, पीले, लाल' 'तरह-तरह के रंग के फेटे दीखते हैं। तरह-तरह का लिबास दीखता है। इतनी विविध जनता और कहीं नहीं दीखती। यही तो सारा विश्व है।

◆◆◆

प्रार्थना-प्रवचन

सरधार (मध्य सौराष्ट्र) १९-११-'५८

गाँव में कम-से-कम एक भक्त सेवक अवश्य रहे

हमारे देश को स्वराज्य प्राप्त होकर दस वर्ष हो गये। स्वराज्य का अर्थ लोग यही समझते हैं कि अंग्रेजों के राज्य में जो सुख नहीं मिल पाया, वह इसमें मिलेगा। लेकिन स्वराज्य का इतना ही अर्थ नहीं। उसका वास्तविक अर्थ तो यह है कि अंग्रेजों के राज्य में हम लोग स्वतंत्र रूप से अपनी योजना बना नहीं पाते थे, आगे विकास नहीं कर पाते थे। किन्तु स्वराज्य में हम अपनी योजना बना सकते हैं और बुद्धि का विकास भी कर सकते हैं। गाँवों का कारोबार गाँववाले ही देखें। यही स्वराज्य का अर्थ हो सकता है। लेकिन आजकल लोग सदैव सरकार का नाम-स्मरण करते रहते हैं, जैसे कि वे भक्त लोग भगवान् की ओर देखते बैठते और यह मानते रहते हैं कि हम नाम-स्मरण करते रहें, तो काम बन जायगा। लोग भी यही सोचते हैं कि हमें सरकार की मदद मिले। वे इसीकी चर्चा करते रहते हैं कि सरकारी मदद मिली या नहीं मिली। अगर वह मिल जाती है, तो सरकार की स्तुति करते हैं और वह न मिल पायी, तो सरकार की निन्दा करते हैं। लेकिन अगर लोगों में स्वतंत्र शक्ति न जगेगी, तो सिर्फ सरकारी योजना से समाज का विशेष कल्याण होगा, ऐसी स्थिति नहीं।

सेवा का अधिकार स्वयंभू

हमारे देश के सामने इतने सारे सवाल हैं। इन सभी सवालों का हल तभी होगा, जब गाँव की जनता स्वयं सोचती जाय। आज मैं इसी बात का अभाव देखता हूँ। सरकारी योजना बहुत करेगी, तो यही होगा कि गाँवों में पंचायत की स्थापना होगी और ऊपर से सत्ता दी जायगी। याने सत्ता की मारफत जो कुछ होगा, सो होगा। गाँव में भी गाँव-सेवा का काम पंचायत की मारफत होगा। 'सत्ता द्वारा सेवा' का सूत्र कायम रखकर ही सरकार इस पर विचार करती है कि पंचायत के हाथ में कितनी सेवा दी जाय। सरकार कहती है कि ज्यों-ज्यों गाँव की योग्यता बढ़ेगी, त्यों-त्यों हम अधिक सत्ता देंगे। लेकिन सोचने की बात है कि आप सत्ता देनेवाले होते कौन हैं?! सर्वसत्ता देने की जिनमें सत्ता है, उन्हें आप क्या सत्ता देंगे? जनता ने ही तो सरकार को सत्ता दी है। इसलिए गाँववाले ही करुणा और प्रेम से गाँव की सेवा करें, यह जरूरी है। गाँव में करुणा न बढ़े और पंचायत की स्थापना हो जाय, उसे सत्ता सौंपी जाय और उस सत्ता की मारफत कुछ सेवा हो जाय, तो वह सेवा की योजना नहीं कही जा सकती। सत्ता द्वारा बिलकुल सेवा होती ही नहीं, ऐसी बात नहीं। फिर भी जो सेवा करुणा से हो सकती है, वह सत्ता से कभी नहीं हो सकती। सच्ची सेवा तो कारुण्य और प्रेम-मूलक ही हो सकती है। माँ बच्चे की सेवा करती है, तो उसे वह सेवा करने की सत्ता किसने दी है? क्या सरकार ने दी है? अतः स्पष्ट है कि गाँव या विश्व की सेवा करने का अधिकार कोई नहीं देता, वह तो हम-आपका स्वयंभू अधिकार है। इसे कोई घटा या बढ़ा नहीं सकता। इसलिए हर गाँव में एक-एक नरसी मेहता जैसा भक्त होना चाहिए। हर गाँव में कम-से-कम एक-एक भक्तिमान् ग्राम-सेवक होना चाहिए।

दुनिया में सन्तों का कभी अभाव नहीं

प्रश्न होगा कि यह कहाँ से मिलेगा? क्या उनकी बारिश होगी? नहीं, वे तो हममें से ही निकलने चाहिए। यहाँ इतने अधिक लोग जुटे हैं। एक-एक गाँव में पाँच-पाँच हजार लोग रहते हैं, तो क्या उनमें से ऐसा एक भी भक्त नहीं निकल सकता? इसलिए गाँववाले श्रद्धा रखें और लोगों की सेवा करने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझें। अगर ऐसा एक भी आदमी गाँव में न रहे, तो वह गाँव लंका से भी गया-गुजरा कहा जायगा। कारण, रावण की लंका में भी विभीषण पैदा हुआ ही था। बचपन में मैं माँ को संतों की गाथाओं की पुस्तकें पढ़ सुनाता था। एक बार मैंने माँ से पूछा कि 'माँ! पहले जमाने में तो बहुत से सन्त हो गये,

लेकिन आज भी कोई सन्त हैं या नहीं ?' माँ कहने लगी—'बेटा ! ऐसा कोई जमाना ही नहीं हो सकता, जिसमें सन्त या भक्त न हों। जिस जमाने में सन्त न होंगे, उस जमाने में सारी जनता ही नष्ट हो जायगी। इसलिए हर जमाने में सन्त और भक्त हुआ ही करते हैं, लेकिन उनकी पहचान हर किसीको नहीं हुआ करती।'

सन्त-सज्जन कैसे होते हैं ?

यह पहचान कैसे हो ? क्या ऐसा आदमी चुनाव में खड़ा हो, तो कोई उसे वोट देगा ? अगर राजा हरिश्चन्द्र चुनाव में खड़े हों, तो उन्हें कोई वोट न देगा। वह स्वयं को बेचने के लिए तैयार हो गया, तो उसका कोई खरीदार नहीं मिला। क्योंकि लोग सोचने लगे कि यह तो सदा सच ही बोलेगा। फिर यदि इसे दूकान में रखा जाय, तो वहाँ की सारी पोल खुल जायगी। इसे असेम्बली में भेजा जाय, तो भी मुश्किल है और कोर्ट में भी मुश्किल ही कही जायगी। फिर ऐसे आदमी को कहाँ रखा जाय ? उसे कहीं स्थान नहीं। मान लीजिये, वह चुनाव में खड़ा हो जाय और यह घोषणा करे कि 'ये सारी मिलें बन्द होंगी, हर किसीको खुद कातकर कपड़ा बनाना होगा, यह सारी सेना खतम हो जायगी, आपको अपनी रक्षा खुद ही करनी होगी, चोरों को दंड नहीं दिया जायगा, न्यायाधीश, न्यायालय, जेल आदि कुछ भी न रहेगा। यह सारा होगा। इसलिए आप मुझे चुन दें। चुनाव में मैं किसी पार्टी से खड़ा नहीं हूँ। अगर मुझे चुन देंगे, तो आपको भंगी-काम करना होगा और सभी भंगियों को मुक्ति देनी पड़ेगी।' ऐसी स्थिति में क्या इस हरिश्चन्द्र को एक भी वोट मिल पायेगा ? इसलिए स्पष्ट है कि महापुरुष और सज्जन जनता के बीच नहीं, गाँवों में मिलेंगे। वे जन-प्रसिद्धि में नहीं आते। वे ग्राम-पंचायतों के चुनाव में भी खड़े न होंगे। रामकृष्ण परमहंस की कथा प्रसिद्ध है कि उन्हें एक बार जब पता चला कि बड़े-बड़े लोग उनसे मिलने आ रहे हैं (क्योंकि वे भगवान् से बातें किया करते हैं, यह ख्याति हो चुकी थी।), तो वे लोटा लेकर निपटने चले गये। सज्जन ऐसे ही हुआ करते हैं। वे कभी चुनाव में खड़े नहीं होते। उन्हें लोक-प्रतिष्ठा की कोई चिन्ता नहीं रहती। उनकी जबान पर यह कभी नहीं आ सकता कि 'हम यह कर देंगे या वह कर देंगे'।

मनु की कहानी

महाराज मनु की कहानी प्रसिद्ध है। वे जंगल में तपस्या कर रहे थे। उनसे पूर्व कोई राजा नहीं था और खुद वे तो तपस्वी ही थे तथा जंगल में रहते थे। लोग जानते थे कि ये सभीका मार्गदर्शन कर सकते हैं। इसीलिए सब लोग उनके पास जा पहुँचे और उन्होंने कहा—'अगर आप हमारे राजा बनें, तो हम बहुत उपकृत होंगे।' मनु महाराज ने कहा—'मैं नरक में जाने के लिए तैयार नहीं। 'राजा' कहा, तो कुछ-न-कुछ दोष आ ही जाता है। अतः पहली बात यह कि उन सबकी जिम्मेदारी आप लोग उठा लें और दूसरी बात, आप सब मिलकर मुझे राजा के तौर पर स्वीकार करें, तभी मैं राजा बन सकूँगा।' साधारणतः ऐसा कहनेवाले लोग नहीं मिला करते। वे गुप्त ही रहते हैं, अतः उन्हें ढूँढ़ निकालना चाहिए। बिना सन्तों की दुनिया ही नहीं होती, पर उन्हें खोज निकालना पड़ता है। पुराने जमाने में ये सन्त और ज्ञानी जंगलों में ढूँढ़ने पर मिलते थे। लेकिन आज के जमाने में तो सभी ज्ञानी कॉलेज, युनिवर्सिटी में ही खो गये हैं। जो विद्वान् माना जाता हो, जो बहुत-सी किताबें पढ़ चुका हो, ऐसे को बड़ा मानकर भगवान् की तरह स्थापित करने की अपेक्षा पत्थरों की पूजा करना कहीं अच्छा कहा जायगा।

मार्ग-दर्शकों को खोज निकालें

इसलिए मार्गदर्शन कर सकनेवाले व्यक्ति को खोज निकालने की अक्ल गाँववालों को होनी चाहिए। यह सम्भव ही नहीं कि हमारे गाँव में एक भी ऐसा व्यक्ति न मिले, जो भक्तिवान्, करुणावान् और राग-द्वेष-रहित हो। उसे आप लोगों को ढूँढ़ निकालना चाहिए। और यदि वह न मिले, तो 'मैं ही ऐसा बन दिखाऊँगा' यह निश्चय करना चाहिए। 'नहीं तो मेरे गाँव की नाक कट जायगी' यह समझना चाहिए। सेवा करने योग्य सज्जनों के लक्षण भी सीखने चाहिए। ये लक्षण गीता में कहे गये हैं। अर्थात् हममें करुणा और मैत्री हो, हृदय में अहंकार न हो, हम सुख-दुःख समान रीति से सहन किया करें, अगर कोई किसीका अपमान करे, तो उसे सहन न करें और सतत सेवा करें। बापू का प्रिय भजन 'वैष्णव-जन तो तेणें कहिये' सभी जानते ही हैं। इन सभी वैष्णव लक्षणों को हमें अपने जीवन में उतारना चाहिए। ग्राम-स्वराज्य के लिए हर गाँव में कोई-न-कोई भक्त होना चाहिए। अगर ऐसा भक्त गाँव में न हो, तो मैं उस गाँव को कौन-सा नाम दूँ ? नरसी मेहता ने ऐसे गाँव को जो नाम दिया है, वही दे रहा हूँ—'मसाणा गाम'। 'मसाणा' याने श्मशान। अर्थात् जिस गाँव में भक्त नहीं, वह श्मशान है।

हृदय के कृष्ण जीवन में उतरें

मैं आशा करता हूँ कि जहाँ के लोग अपने हृदय में भगवान् श्रीकृष्ण को रखते हैं, वे सौराष्ट्रवासी उन्हें जीवन में भी उतारेंगे। सौराष्ट्र में सभी लोग कृष्ण भगवान् बन जायँ, तो गाँव-गाँव आज जो कंस-झगड़ा चलता है, वह बन्द हो जायगा। गाँव-गाँव भक्त बन जायँ, तो वे लोग इस कंस-झगड़ों में जो निर्णय देंगे, वे आज के कोर्टों के मुकदमों से कहीं अच्छे होंगे। इस तरह हर गाँव में ग्राम-स्वराज्य हो जाय, तो सज्जनों का मार्ग-दर्शन प्राप्तकर हर गाँव एक परिवार बनकर काम करेगा। उस समय सरकार की मदद भी ठीक से मिल पायेगी। भूदान, ग्रामदान से गाँव की शक्ति विकसित होगी और गाँव अपने पैरों पर खड़े होंगे। गाँव की सफाई, शिक्षा, रक्षण, पोषण आदि सारी व्यवस्था गाँववाले ही करेंगे। गाँव में ग्रामोद्योग चलाये जायँगे। ग्राम-पंचायतें झगड़े करनेवाली नहीं, बल्कि झगड़े मिटानेवाली होंगी। इन सबके लिए हर गाँव में एक-एक भक्त-सेवक होना चाहिए।

अपने-आपको पहचानें

सेवक के लिए हर घर में सर्वोदय-पात्र रखा जाय। बहुत से लोग मुझसे पूछते हैं कि मान लीजिये, हर घर में सर्वोदय-पात्र की स्थापना हो जाय, पर सेवक न मिलें, तो उस अनाज का क्या किया जाय ? भक्त मानव न मिले, तो क्या किया जाय ? मैं उनसे पूछता हूँ कि यह मुझसे कौन पूछ रहा है, मानव ही या और कोई ? आश्चर्य की बात है कि मानव न मिले, तो क्या किया जाय, यह मानव ही पूछता है। बताइये तो सही—आप कौन हैं ? आखिर ऐसी तकरार क्यों ? जब कि हिन्दुस्तान में ऐसी व्यवस्था है कि गृहस्थाश्रम के एक निश्चित अवस्था के बाद निवृत्त होना चाहिए और लोगों की सेवा में लग जाना चाहिए' वहाँ आदमी नहीं मिलते, इस फरियाद के लिए क्या कहा जाय ? यह योजना होनी चाहिए कि मानव एक निश्चित अवस्था के

बाद वानप्रस्थी बने और विषय-वासना से निवृत्त हो समाज-सेवा के लिए प्रवृत्त हो जाय। हिन्दुस्तान में आज जो योजनाएँ चलती हैं, वे कागजों पर ही रह जाती हैं। किन्तु यह योजना कार्यान्वित करने की है। तभी काम करनेवाले आदमियों की कमी का अनुभव न होना चाहिए। अतः आपको ऐसे आदमी खोजने चाहिए और खुद भी वैसा बनना चाहिए। ऐसे व्यक्ति कहीं दूर नहीं हैं। खुद आप ही ऐसे हैं और हो सकते हैं। वेदान्त का 'दशमस्त्वमसि' यह दृष्टान्त सुप्रसिद्ध है। आप लोग अपना स्वरूप भूल गये, इसीलिए ऐसी शंकाएँ किया करते हैं। अतः अपने को पहचानिये और हजारों की संख्या में सौराष्ट्र में भक्त सेवक खड़े कर दीजिये। इस तरह विचार करें, तो आपसे तीन हजार सेवकों की जो माँग की गयी है, वह कोई बड़ी बात नहीं है।

◆◆◆

विद्यार्थियों के बीच

राजकोट २२-११-'५८

संयम और श्रम के साथ आत्मज्ञान, विज्ञान और साहित्य की शक्ति अर्जन करें

अन्य सभाओं की अपेक्षा मेरी सभा में विद्यार्थियों की काफी भीड़ हुआ करती है। इसका कारण यही है कि मानव जिस जाति का होता है, उसमें वह बड़ी सरलता से आ मिलता है और उस जाति को सहज ही स्फूर्ति भी दे सकता है। मैं आज तक विद्यार्थी ही हूँ। आप सब जानते हैं कि मैं गत ७-८ वर्षों से यात्रा कर रहा हूँ। रोज घूमता हूँ, फिर भी आप मेरी कोठरी में जाकर देखें, तो मालूम पड़ेगा कि सचमुच यह एक किसी विद्यार्थी की ही कोठरी है। आपको वहाँ और कुछ देखने को नहीं मिलेगा। आपके इस शहर में बापू का घर है, जहाँ वे बचपन में रहते और स्कूल जाते थे। मुझे आज वह घर दिखलाया गया। बापू की वह कोठरी, जिसमें उन्होंने बचपन में अध्ययन किया था, भी दिखलायी गयी। उस कमरे में कई कुर्सियाँ भी थीं। जिस तरह वह कमरा यह बताता है कि बापू बचपन में यहाँ अध्ययन करते थे, उसी तरह मेरी कोठरी भी रोज यह बता सकती है कि देखो, यह एक विद्यार्थी की कोठरी है। यह विद्यार्थी नित-नया अध्ययन करता रहता है। अनेक भाषाएँ, अनेक धर्म, अनेक शास्त्र और अनेक कलाएँ, इस तरह रोज नया-नया अध्ययन चलता ही रहता है। मेरा सबसे ताजा अध्ययन जर्मन भाषा का था। इस उम्र में मैं जर्मन भाषा सीखता और उसके लिए समय देता रहा। एक ओर ग्रामदान जैसा बड़ा आन्दोलन चलाते हुए मैंने जर्मन भाषा किस तरह सीखी होगी, यह आप सोच सकते हैं।

जीवन के स्थायी तीन तत्त्व

जीवन में कितने ही विषय ऐसे होते हैं, जो सदा के लिए अपना महत्त्व रखते हैं। अतः अध्ययन मानव-जीवन में स्थायी महत्त्व रखा करते हैं। मानव-जीवन किस तरह बदलता है, उसमें किन कारणों से परिवर्तन होता है, उसके तीन मुख्य विषय होते हैं—१. विज्ञान, २. आत्मज्ञान और ३. साहित्य। इन तीनों का प्रभाव दुनिया पर हुआ करता है।

इतिहास का प्रभाव सर्वथा अस्थायी

हम मानते आ रहे हैं कि विज्ञान की अपेक्षा इतिहास श्रेष्ठतर है। इसीलिए विद्यार्थियों को पढ़ाया जाता है कि बाबर या अकबर आये और उन्होंने बड़ा काम किया। औरंगजेब आया और उसने काफी काम किया। किन्तु इस तरह अनेक राजा-महाराजा आये और उनका देश पर कुछ असर हुआ, यह सिखलाया जाता है; लेकिन यह सर्वथा मिथ्या है। किसी भी राजा या महाराजा का देश पर स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा। अवश्य ही कुछ समय के लिए दुनिया पर इनका प्रभाव होता है, लेकिन जैसे वे आकर चले जाते हैं, वैसे ही उनका असर भी चला जाता है। जैसे कल नहाये और रात में खाकर सो गये, तो सुबह वह पहला स्नान जाने कहाँ चला जाता है, शरीर ज्यों-का-त्यों बन जाता है। स्नान तो कल हुआ। उसका कल तक के लिए ही असर था। इसी प्रकार जिस जमाने में राजा-महाराजाओं का असर हुआ, वह उस जमाने तक के लिए ही सीमित था।

आत्मज्ञान निर्भयता की कुंजी

फिर प्रश्न होता है कि आखिर निरन्तर प्रभाव किसका होता है? स्नान का प्रभाव तो निरन्तर स्नान करते रहें, तभी होता है। लेकिन दूसरी एक ऐसी शक्ति है, जिसका निरन्तर प्रभाव होता है और वह है, आत्मज्ञान। यदि मानव आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर ले, तो उसका प्रभाव कभी मिट नहीं सकता। वह निरन्तर मानव के पास बना रहता और उसे सदैव भय से मुक्त करता है। मुझे साबरमती-आश्रम की वह घटना याद है। वहाँ मैं रोज नदी पर स्नान करने जाया करता। एक दिन मैं नहाने गया, तो नदी में बह चला। तैरना तो कुछ जानता अवश्य था, लेकिन डूबने जैसा ही वह जानना था। तैरने के बारे में तीन प्रकार का ज्ञान हुआ करता है। एक तो यह कि जिससे आदमी डूब जाय। दूसरा, जिससे आदमी तैरता रहे। और तीसरा, जिससे आदमी दूसरे को भी तार सके, उबार सके। उन दिनों मुझे पहले ही प्रकार का ज्ञान था, इसलिए मैं बह चला। मुझे कोई आशा नहीं रही कि अब जीता वापस आ सकूँगा और यह ग्रामदान का काम भी मेरे हाथों चल पायेगा। किनारे पर कितने ही लोग यह देखने के लिए दौड़ पड़े। उन्हें देख मैं चिल्लाया कि बापू से कह दीजिये कि 'विनोबा तो जा रहा है, पर आत्मा अमर है।' आप समझ सकते हैं कि उस समय मेरी अवस्था कोई बहुत अधिक या प्रौढ़ नहीं थी। यह १९१८ की बात है। ४० वर्ष हुए होंगे। फिर भी मुझे अन्दर से इतनी दृढ़ श्रद्धा थी कि विनोबा तो अमर ही है। वह कभी मरता नहीं। उसका यह शरीर तो आता और जाता ही रहता है। इतनी सारी निर्भयता मुझमें आ गयी थी। वैसे मुझे उन दिनों कोई विशेष ज्ञान तो था नहीं, पर आत्मज्ञान पर अटल श्रद्धा थी, जिसके करते भय मुझे कभी छू तक न पाया।

प्रभावी कौन—सन्त या राजनीतिज्ञ?

सन्तों का अनुभव प्रसिद्ध है कि भले ही ज्ञान न हो, पर ज्ञान पर श्रद्धा हो, तो भी मानव मुक्त हो सकता है और उसके जीवन पर उसका स्थायी प्रभाव पड़ता है। जिस तरह व्यक्ति के जीवन पर आत्मज्ञान का ऐसा प्रभाव पड़ता है, उसी तरह समाज-जीवन पर भी वह पड़ता है। तुलसीदासजी तो चले गये, पर उनका ग्रन्थ सदा के लिए भारत में लोगों पर संस्कार डालने के लिए रह गया। फिर भी बच्चों को यही पढ़ाया जाता है कि तुलसीदास अकबर के जमाने में हो गया, जब कि अकबर का आज भारत में कुछ प्रभाव

नहीं रहा है। सिर्फ गुजरात की ही बात नहीं, सारे भारत की बात कर रहा हूँ। जहाँ उसका प्रत्यक्ष राज्य चलता था, उस दिल्ली नगर से ४० मील दूर मेवातों के प्रदेश में निर्वासितों की सेवा करते समय एक दिन आम सभा में मैंने प्रसंगवश अकबर का एक दृष्टान्त दिया और पूछा कि लोग अकबर का नाम जानते हैं या नहीं! आश्चर्य की बात है, वहाँ के मुसलमान भाई अकबर का नाम नहीं जानते थे और उन्होंने मुझे कोई जवाब नहीं दिया। मजा यह कि फिर भी आज ऐसे व्यर्थ के मरहूम बादशाहों और राजाओं के नाम इतिहास के नाम पर बच्चों को रटाये जाते हैं। मैंने उनसे पूछा कि 'अकबर बादशाह न सही, पर 'अकबर' नाम सुना है या वह भी नहीं?', तो उन्होंने कहा—'हाँ, अकबर नाम तो सुना है। हम लोग 'अल्ला हो अकबर' कहा करते हैं।' अरबी के इस शब्द का अर्थ है, सबसे बड़ा, सबसे श्रेष्ठ अल्लाह। इसीलिए इतिहास पढ़ानेवालों से यह पूछा जा सकता है कि आप तो अकबर के जमाने में तुलसीदास हो गया, यह पढ़ाते हैं; लेकिन क्या अकबर के जमाने में तुलसी हुए या तुलसी के जमाने में अकबर? आखिर वह जमाना किसका था? क्या वह राजा-महाराजाओं का जमाना था या आत्म-ज्ञानियों का? इससे स्पष्ट है कि मानव-जीवन पर आत्मज्ञान और आत्मज्ञानी का गहरा प्रभाव हुआ करता है।

जीवन में विज्ञान का स्थान

मानव-जीवन पर दूसरा स्थायी प्रभाव वैज्ञानिकों एवं विज्ञान का हुआ करता है। वैज्ञानिक जो नये-नये औजारों की खोज करते हैं, उससे जीवन काफी बदल जाता है। आज हम जैसे कपड़े पहनते और जो बोली बोलते हैं, उसे देख-सुनकर पुराने जमाने का आदमी आश्चर्य करने लगेगा। वह सोचेगा कि यह कितनी अद्‌भुत बात है कि एक बोलता है, तो हजारों-लाखों मजे से उसे सुन पा रहे हैं। हमारे जमाने में यह युक्ति सध नहीं पायी थी। मेरे जैसे बूढ़े आदमी की आँखें तो गयीं, फिर भी वह चश्मे से दूर तक की देख सकता है। अगर चश्मा निकाल दे, तो कुछ भी दिखाई न पड़ेगा। यह सारी शक्ति विज्ञान से प्राप्त होती है। इसलिए वैज्ञानिकों का ऐसा असर होता है कि सारे जीवन का स्वरूप ही बदल जाता है। फिर जो वैज्ञानिक नये-नये शस्त्र बनाते हैं और उनका उपयोग होता है, तो मनुष्य के जीवन में एक दूसरा ही परिवर्तन हो जाता है।

साहित्य-शक्ति का चमत्कार

तीसरी तथा सर्वोत्तम शक्ति है, साहित्य की। वह भी चिरंजीवी हुआ करती है। वाल्मीकि और तुलसी की रामायण चिरंजीवी है। वह जमाने पर असर डालती है। विद्यार्थियों को इन तीनों शक्तियों का अच्छा परिचय प्राप्त करना चाहिए। उन्हें समझना चाहिए कि हम मानव-जीवन में परिवर्तन लानेवाली इन तीनों शक्तियों को हासिल करें। मैं तो इस साहित्य-शक्ति को सतत प्राप्त करता रहता हूँ। इसीलिए इस बुढौती में मैंने जर्मन भाषा सीखी। मैं कोई जर्मन भाषा सीखकर वेद पर ग्रन्थ लिखना नहीं चाहता। इसलिए मैंने यह नहीं सीखी। यह सारा भूदान-ग्रामदान का काम चलता है। फिर भी उसमें से चोरी से थोड़ा-बहुत समय मिल ही जाता है। आज भी वह मिल गया। आप लोगों को भी समय की चोरी की यह कला सीखनी चाहिए।

समय की चोरी करना सीखिये

आजकल विद्यार्थी रात में काफी जागते हैं। कितने ही लोग तो सिनेमा देखने जाते हैं, वह तो बिलकुल बेकार की चीज है। उससे आँखें बिगड़ती और नींद भी हराम हो जाती है, अध्ययन तो होता ही नहीं। इस तरह जब रात में निःस्वप्न निद्रा नहीं आती, तो सुबह देर से जागना स्वाभाविक ही है। जब कि सारी सृष्टि जग जाती और सर्वत्र कोलाहल मचा रहता है, उस समय अध्ययन के लिए एकाग्रता कहाँ मिल सकती है? इसलिए अगर समय की चोरी करनी हो, तो उसके लिए सुबह का समय बहुत ही अच्छा होता है। आप लोगों को चाहिए कि मुझसे पूछें कि 'बाबा, आप कब सोते हैं? अपने काम की बातें ही मुझसे पूछनी चाहिए।' जब आपको यह पता चलेगा कि इतना बड़ा आदमी रात में सवा आठ बजे सो जाता है, तो आप जैसे नन्हे-नन्हे बच्चों को तो सात बजे ही सो जाना चाहिए। फिर जागना भी जल्दी चाहिए, जब कि सभी लोग सोये हुए हों। शान्त निद्रा हो जाने से आपके मस्तिष्क का बोझ मिट जायगा। फिर सुबह जल्दी उठकर मुँह धोयें और शौचादि से निवृत्त हों। उसी समय अच्छी जाग्रति और सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा सध पाती है। लेकिन अगर यह स्वर्ण समय हम सोने में बिगाड़ें और सूर्यनारायण के उगने के बाद जगें, तो कोलाहलपूर्ण वातावरण में कुछ भी न सध पायेगा। इसीलिए मैं रोज रात में सवा आठ बजे सोता और भोर में तीन बजे उठ जाता हूँ। फिर सुबह रोज घूमता हूँ, जिससे चिन्तन के लिए भी काफी समय मिल जाता है। अध्ययन के लिए भी थोड़ा समय चुराकर निकाल ही लेता हूँ। इसलिए विद्यार्थियों को भूलकर भी सुबह का समय नहीं बिगाड़ना चाहिए। इस तरह उन्हें इन तीनों शक्तियों का अच्छा उपयोग करना चाहिए।

अंग्रेजी कब पढ़ी जाय?

आजकल विद्यार्थियों को एक दूसरा सवाल परेशान करता है कि अंग्रेजी पढ़ी जाय या नहीं और पढ़नी हो, तो कब पढ़ी जाय? इसकी शुरुआत कब करनी चाहिए? मैं कहता हूँ कि अंग्रेजी या अन्य किसी भाषा की शुरुआत तभी करनी चाहिए, जब अपना दिमाग और बुद्धि अत्यन्त स्पष्ट हो गयी हो। अस्पष्ट बुद्धि रहते विदेशी भाषा काम न देगी, उसके लिए तो स्पष्ट बुद्धि चाहिए। स्पष्ट बुद्धि का अर्थ है कि हम विचारों को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त कर सकें और उन विचारों का संबंध जिन शब्दों से हो, उनका हमें अच्छा ज्ञान हो। तभी हमें दूसरों की भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त हो सकता है। आप मुझसे पूछेंगे कि 'आपने जर्मन भाषा कितने दिनों में सीखी?' मैं कहूँगा—'बीस दिनों में सीख ली।' यह काम इतना अधिक आसान हो गया। मेरी मातृभाषा मराठी है, लेकिन मुझे व्याकरण सहित संस्कृत के प्रत्येक शब्द का ज्ञान है। वह मेरे काम लायक पूरा है, बाकी ज्ञान तो अपूर्ण ही रहता है। इसलिए दूसरी कोई भाषा सीखना इसीलिए शुरू करता हूँ कि मेरे ज्ञान के साथ उसकी तुलना करूँ, जिससे पता चले कि मेरे पास कितना ज्ञान पड़ा हुआ है।

तमिलनाड़ की यात्रा में मैंने जापानी भाषा भी सीखी। यद्यपि उस भाषा में बोलना या व्याख्यान देना नहीं आता, फिर भी पुस्तक लेकर डिक्शनरी के सहारे काम चल सकता है। एक जापानी भाई हमारी यात्रा में दो महीने साथ थे। वे बहुत ही

साधु पुरुष थे। वे इन लड़कियों को जापानी पढ़ाते थे और मैं सुनता था। इसी तरह मुझे जापानी भाषा का ज्ञान हुआ। इस तरह निरन्तर ज्ञान प्राप्त करने की वृत्ति हममें होनी चाहिए और यह शक्ति हमें प्राप्त करनी चाहिए।

ज्ञान-प्राप्ति की शक्ति पाने का समय

विद्याभ्यास के समय अधिक ज्ञान प्राप्त करने की कोई जरूरत नहीं। दुनिया में ज्ञान का भंडार भरा पड़ा है। उसमें से हम अपने कामभर का ले लें। आगे भी हमें बहुत कुछ हासिल करना बाकी है। इसलिए ज्ञान का संग्रह करना विद्याभ्यास के समय का काम नहीं। वास्तव में उस समय ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति हासिल करनी चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर मानव से पूछकर ज्ञान प्राप्त करने में स्वावलंबी बनना चाहिए और उसके बाद जितना भी प्राप्त करना हो, प्राप्त करना चाहिए। आँख, कान, बुद्धि और पुस्तक का उपयोग कर ज्ञान प्राप्त हो जाय, तो उसे प्राप्त करना चाहिए। सवाल पूछकर बहुत-सा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए शक्ति तो चाहिए ही। इसके लिए अंग्रेजी भाषा क्या है, यह भी समझना चाहिए।

चार अत्यावश्यक भाषाएँ

आप लोग अंग्रेजी सीखते हैं, यह तो ठीक ही है। लेकिन आपको गुजराती भाषा भी सीखनी ही चाहिए। गुजराती भाषा तो माँ ने ही सिखा दी है। अब इसमें अधिक सीखना क्या बाकी है? फिर भी गुजराती भाषा किस तरह बनी है, यह सब जानना चाहिए। इसमें संस्कृत के प्रयोग आया करते हैं, अरबी के भी प्रयोग आते हैं, तो उन सभी शब्दों का भी ज्ञान होना चाहिए। इस तरह गुजराती का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लें और फिर हिन्दी न पढ़ें, तो भी आप मूर्खों में गिने जायँगे। गुजराती पढ़ने के बाद हिन्दी सीखने में जरा भी कठिनाई नहीं है। जो भाषा सारे देश में चलती हो, उसे न सीखा जाय, तो हम एक कोने में ही रह जायँगे। इसलिए हिन्दी भाषा तो सीखनी ही चाहिए। फिर मराठी लोग तो हमारे पड़ोसी भाई हैं। इसलिए हम मराठी न सीखें, तो हमारी मूर्खों में गणना न होगी, तो किसमें होगी? आप लोग जानते हैं या नहीं कि आपके द्वारकाधीश भगवान् कृष्ण गुजराती थे और उनकी पत्नी रुक्मिणी मराठी। रुक्मिणी का जन्म वर्धा नदी के किनारे हुआ था। उस गाँव का नाम दुंदनपुर था। वह शहर तीस मील घेरे में था। वह महाराष्ट्र का मुखमण्डल याने बम्बई जैसा बड़ा नगर था। धीरे-धीरे उसका वैभव कम होता गया और आज तो वह मामूली गाँव रह गया है। इसलिए हम मराठी न सीखेंगे, तो हमारा काम न चलेगा। यह भाषा तो हमें मुफ्त में आ सकती है, क्योंकि इसकी लिपि देवनागरी ही है। व्याकरण-रचना भी दोनों की लगभग समान ही है। ऐसी स्थिति में हम यह भाषा न सीखें, तो वह हमारा आलस्य ही कहा जायगा। इस तरह मराठी, गुजराती और हिन्दी पढ़ें और इन सबकी मूल संस्कृत भाषा न पढ़ें, तो भी क्या काम चल सकेगा? इनमें ४०।५० प्रतिशत संस्कृत शब्द आते ही हैं। तब संस्कृत न सीखें, तो कैसे चलेगा? इसलिए संस्कृत तो सीखनी ही चाहिए। इस तरह ये चार भाषाएँ पढ़ना अत्यावश्यक है। इसके बाद यदि कोई विदेशी भाषा सीखनी हो, तो ज्ञान के लिए उन्हें आप खुशी से सीख सकते हैं। अनेक बाहरी भाषाएँ सीखने से ज्ञान ही बढ़ता है। लेकिन वे तभी सीखी जायँ, जब कि अपनी भाषा में स्पष्ट विचार रखने की शक्ति आ जाय और स्पष्ट प्रतिशब्द सूझते हों। नहीं तो लोग अंग्रेजी सीख लेते हैं और अपनी मातृभाषा या हिन्दी में उसके ठीक प्रतिशब्द नहीं दे पाते। उसके लिए भी डिक्शनरी का सहारा लेना पड़ता है। यह बड़ी विचित्र बात है। इसलिए दूसरी विदेशी भाषा सीखने से पहले मातृभाषा, राष्ट्रभाषा, संस्कृतभाषा और पड़ोस की भाषा आदि में प्रवीणता अवश्य प्राप्त करनी चाहिए।

विद्यार्थियों को सयुक्तिक समझायें

आज सारे देश का विद्यार्थी-समाज जाग्रत हो गया है। हिन्दुस्तान और अन्य दूसरे देशों में आज विद्यार्थी-समाज केवल अध्ययन ही नहीं करता। वह अपना काम भी करता है। उसका क्षेत्र सारा देश है। वह यात्रा करता है, लोकसेवा करता है, गाँव-गाँव जाकर सर्वेक्षण करता है—इस तरह बहुत सारे काम आज का विद्यार्थी-समाज किया करता है। किसी भी देश के स्वातंत्र्य-संग्राम में विद्यार्थी पीछे रहता ही नहीं। विद्यार्थी सदैव क्रान्ति के लिए अगुआ हुआ करते हैं। उनमें कुछ-न-कुछ नया काम करने का उत्साह रहता है। फलतः पुराने लोगों के हाथ में ये नये लोग रह नहीं पाते। फिर पुराने लोग शिकायत करते हैं कि आजकल के विद्यार्थी कुछ सुनते ही नहीं। वे किसीकी कुछ नहीं मानते।

इस सम्बन्ध में मुझे बचपन की एक बात याद आ रही है। बचपन में मुझे घर के ही किसी व्यक्ति ने कहा कि चोटी के बाल खुले रखने से ब्रह्महत्या का पाप लगता है। मैं सोचने लगता कि चोटी न बाँधने का इतना बड़ा पाप! अब तो लोग चोटी ही कटवा देते हैं, तब तो कुछ भय ही नहीं रहा। लेकिन इस तरह चोटी के बाल खुले रहने का ब्रह्महत्या से क्या ताल्लुक है, यह मेरी समझ में नहीं आ रहा था। एक दिन विचार करते-करते ध्यान आया कि कदाचित् चोटी खुली रखने से इतना पाप है, तो ब्रह्महत्या करने से कितना पाप होगा, इस तरह कहने का यही रहस्य तो न होगा? मैंने माँ से पूछा, पर वह भी इसपर क्या उत्तर दे? सारांश, इस तरह आप विद्यार्थियों को कुछ-का-कुछ समझायेंगे, तो वे कभी न समझ पायेंगे। फलतः वे आपकी बात न मानेंगे, तो आप उनकी शिकायत करेंगे कि वे हमारी बात नहीं मानते, अवज्ञा करते हैं। इसका अर्थ क्या रहा? वास्तव में विद्यार्थियों को इस तरह समझाना चाहिए कि उनका समाधान हो जाय। बात उनकी समझ में आ जाय। उन्हें ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रहती है, जो पुराने लोगों के उत्तर से पूरी नहीं होती। उनकी अटपटी बात विद्यार्थियों के दिल में नहीं बैठ पाती। इसमें विद्यार्थियों का कोई दोष नहीं।

जाग्रति के साथ श्रम और सेवा भी करें

विद्यार्थी सदा आगे बढ़ना चाहता है, तो उसे आगे बढ़ने देना चाहिए। मैं विद्यार्थियों को अविनय सिखाने के लिए नहीं आया हूँ। फिर भी इतना अवश्य कहूँगा कि विद्यार्थियों को स्वतन्त्र बुद्धि रखनी चाहिए। वे स्वतन्त्र बुद्धि रखें, तो कुछ भी अनुचित या गलत नहीं। आज सारी दुनिया में विद्यार्थी-समाज जाग गया है, यह बहुत आनन्द की बात है। लेकिन इस जाग्रति के साथ उन्हें शक्ति-संग्रह भी करना चाहिए। अगर ऐसा न हुआ, तो जागने के बाद की यह स्थिति बड़ी ही खतरनाक हो जायगी। अभी तक तो वह जगा ही नहीं था, इसलिए असन्तोष का कोई सवाल ही न था। लेकिन एक बार जग जाने के बाद आगे काम किस तरह किया जाय, इसका

ज्ञान न हो, तो विद्यार्थियों में असन्तोष पैदा होगा। इसलिए विद्यालय में जो ज्ञान मिलता है, उसके साथ सेवा के काम में भी विद्यार्थियों की शक्ति लगनी चाहिए। आजकल तो माताएँ घर पर पढ़नेवाले बच्चों को काम ही करने नहीं देतीं। कहती हैं कि तू अपना अध्ययन कर, तू उसीमें ध्यान दे। लड़कियाँ तो थोड़ा-बहुत काम करती भी हैं, पर लड़के तो कुछ भी नहीं करते। इस तरह माँ अपने लड़के-लड़कियों को, विशेषकर लड़कों को श्रम से बचाती हैं। पुराने जमाने में विद्यार्थी गुरु के घर पढ़ने जाता, तो उसे वहाँ पूरी सेवा करनी पड़ती थी। लेकिन आज तो वैसी सेवा करने का अभ्यास ही छूट गया। फलतः इन्द्रियाँ शरीर आदि बिलकुल निर्बल हो जाते हैं। तरह-तरह के रोगों के शिकार हो जाते हैं। फिर वे विभिन्न कृत्रिम सौन्दर्य-प्रसाधनों से अपने को सजाते रहते हैं। लेकिन सच्चा सौन्दर्य तो स्वास्थ्य, प्रेम और ज्ञान में है। वैसे नाक, आँख, चेहरे आदि का सौन्दर्य कोई सच्चा सौन्दर्य नहीं। हर देश और काल, रीति-रिवाज की दृष्टि से सौन्दर्य की अलग-अलग कल्पना हो सकती है। अतएव उनमें सच्चा सौन्दर्य नहीं। इसलिए माताएँ बच्चों को श्रम से बचाती हैं, धूप, बारिश से बचाती हैं, तो यह गलत है। हम यह ध्यान रखें कि पंचमहाभूत हमारे दुश्मन नहीं। फिर उनसे बचने की क्या बात है? सचमुच ये पंचमहाभूत हमारे महामित्र हैं, उनसे डरने की कोई बात नहीं। इसलिए खुली हवा में खूब घूमना, खूब खेलना चाहिए और खूब काम करना चाहिए। खेत में जाकर काम करना चाहिए। लम्बी-लम्बी यात्राएँ करनी चाहिए। बरसात में खुले बदन काम करना चाहिए। इस तरह शरीर को मजबूत बनाने पर आगे चलकर मानव स्वतन्त्र रह सकता है। नहीं तो आराम और सुख-सुविधाएँ भोगने की आदत पड़ी रहे, तो लड़के बहुत ही नाजुक हो जायँगे। फिर अयूबखान जैसा कोई आ जाय, तो एकदम घबड़ा उठेंगे। इसलिए शरीर इतना नाजुक नहीं रखना चाहिए।

क्या बच्चों को जल्दी जगाना क्रूरता?

बच्चों को जल्दी जगाने में कितनी ही माताओं को क्रूरता प्रतीत होती है। साबरमती-आश्रम में बच्चों की माताओं और बापू के बीच हमेशा झगड़ा चलता रहता। बापू कहते, 'बच्चों को प्रार्थना के लिए जगाना ही चाहिए और अगर उनको अधिक नींद की जरूरत हो, तो प्रार्थना के बाद वे सो जायँ।' प्रार्थना ४ बजे हुआ करती। अगर उस समय छोटे बच्चों को जगाया जाता, तो उनकी तबीयत अच्छी न रह पाती। यह झगड़ा नियमित चलता रहता। फलतः बाद में बापू जरा नरम पड़ गये और उन्होंने प्रार्थना देरी से करनी शुरू की। ४ के बदले ४-२० पर प्रार्थना होने लगी। बच्चों को २० मिनट की सहूलियत दी गयी। मैं तो भोर में नदी से स्नान करके प्रार्थना में पहुँचता। मेरे साथ कितने ही बच्चे स्नान करने जाते। विष्णुदास भी उनमें था और कदाचित् यह पुरुषोत्तम भी होगा। ये बच्चे मेरे साथ जाते और ठंड में नदी में स्नान करते। फिर 'बा' की सुलगी अँगीठी में तापते और तब प्रार्थना करने जाते।

मेरी माँ भोर में उठकर पीसती और साथ-साथ रुक्मिणी, सीता और सावित्री के गीत भी गाती। वैसे मुझे अच्छी नींद आती, पर माँ जल्दी उठा देती, तो मैं उठ जाता और अपना अध्ययन करने लगता। इस तरह यह आदत मुझे बचपन से पड़ी हुई है। परिणामस्वरूप बुद्धि उत्तम विषयों को ग्रहण करती है। विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण के जाने की बात सभी जानते ही हैं। उस समय राम की अवस्था १६ वर्ष की भी नहीं थी। विश्वामित्र की माँग पर दशरथ जरा सहमे। पर अन्ततः वशिष्ठ के आग्रह पर उन्हें राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के हवाले कर ही देना पड़ा। वहाँ राम-लक्ष्मण भोर में उठकर नदी में स्नान करते, संध्या आदि करते। इस तरह उन्होंने बहुत सफल जीवन बिताया। उसके बाद ही उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ और उन्होंने जीवन में पराक्रम भी कर दिखलाया। इसीलिए सफल जीवन की आदत डालनी चाहिए।

'कुतो विद्यार्थिनः सुखम्?'

आजकल तो छात्रालय के लिए विज्ञापन निकलते हैं। लिखा जाता है कि हमारे छात्रालय में अमुक-अमुक सुविधाएँ दी जाती हैं। किन्तु ऐसे छात्रालय में जाकर क्या करेंगे? जहाँ सुविधाएँ न हों, ऐसे छात्रालयों में जायँ, तो शरीर मजबूत भी बनेगा। व्यास ने महाभारत में लिखा है:

सुखार्थी चेत् त्यजेत् विद्यां विद्यार्थी चेत् त्यजेत् सुखम्।
सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्॥

याने सुखार्थी हो, तो वह विद्यार्थी नहीं बन सकता और विद्यार्थी हो, तो वह सुखार्थी नहीं हो सकता। या तो सुख ही चाहें या विद्या। दोनों में से जो एक चाहें, उसे तय कर लें। अगर दोनों चाहने लगें, तो गुजराती की वह कहावत ही चरितार्थ होगी कि 'बाबाना बेऊ बगड़े' (न घर के, न घाट के)। इसलिए विद्यार्थी जैसा चाहें, निर्णय करें। अगर वे विद्या चाहते हों, तो सुख को एक ओर रख दें और कठिन जीवन बिताने का अभ्यास करें, शरीर-श्रम करें। अपने कपड़े अपने हाथों धोयें। माँ को मदद दें। चक्की पीसें। अगर इस तरह विद्यार्थी करें, तो वे सर्वोदय के योग्य होंगे।

कई लोग मुझसे पूछते हैं कि विद्यार्थी सर्वोदय-आन्दोलन में क्या मदद दें? मैं कहूँगा कि वे शरीर-श्रम की निष्ठा बनायें। अपना काम खुद करें। शरीर को खपायें। इन्द्रियों पर काबू रखें और संयमी बनें। अगर वे ऐसा करते हैं, तो वे बड़े परिश्रमी बनेंगे और फिर उनसे सर्वोदय को काफी मदद मिलेगी। बाकी तो वे छुट्टियों में गाँव-गाँव जाकर सर्वोदय-विचार का प्रचार किया करें। इसी तरह वे सर्वोदय-विचार का अध्ययन भी कर सकते हैं। मैं आशा करता हूँ कि आप यह सब अवश्य करेंगे।

◆◆◆

अनुक्रम

१. आजादी के बाद एकमात्र कार्यक्रम... सिंघानी २ अप्रैल '५९ पृष्ठ ३४९
२. पंजाब को विश्वमय और... समाना २२ अप्रैल '५९ ,, ३५०
३. गाँव में कम-से-कम... सरधार १९ नवंबर '५८ ,, ३५१
४. संयम और श्रम के साथ... राजकोट २२ नवंबर '५८ ,, ३५३

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता: गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन: १३९१ तार: 'सर्व-सेवा' वाराणसी।